Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed
Multidisciplinary Journal
Volume 3 | Issue 4 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

शोध–पत्र

आरती लोकेश के कथा–साहित्य में चित्रित स्त्री–संघर्ष

डॉ. सुशील कुमार,
sushilkumarbizla@gmail.com

सारांश

आरती जी के कथा साहित्य में स्त्री जीवन के विभिन्न पक्षों के संघर्षों को उकेरा गया है। स्त्री को यह संघर्ष मुख्यतः समाज में लैंगिक असमानता के आधार पर होने वाले भेदभाव के कारण करना पड़ता है। स्त्री हृदय की संवेदना, मार्मिकता व अन्तर्वेदना को लेखिका ने आत्मीयता एवं गहराई से अनुभव करके उस अनुभव को रोचकता से गूँथने की कला–मर्मज्ञता आरती जी के कथा साहित्य में स्पष्ट दिखाई देती है। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्रीमन की अन्तरंग अनुभूतियों की अद्भुत आभा साहित्य के कैनवास पर बिखेरी है। वे अपनी रचनाओं में स्त्री के स्वतन्त्रचेता अस्तित्व की हिमायत करती हुई दिखाई देती हैं।

महत्त्वपूर्ण शब्द :– लैंगिक असमानता, अन्तर्वेदना, स्वतन्त्रचेता अस्तित्व, जागरुकता, संघर्ष, पितृसत्ता, भ्रूण–हत्या, सकारात्मक बदलाव, संवेदनशील दृष्टि, कुत्सित मानसिकता, शारीरिक शोषण।

भूमिका :–

भारतीय साहित्य में स्त्री संघर्ष हमेशा से एक विचारणीय विषय रहा है। लेखक या दृष्टि और विषय भले ही बदल जाए परंतु वैयक्तिक अनुभवों की सामाजिक सूक्ष्मताओं तथा वास्तविक परिस्थितियों की समग्रता से अभिव्यक्ति सदैव विद्यमान रहती है। लेखिका ने स्त्री जीवन की ज्वलंत समस्याओं के साथ–साथ स्त्री की जागरुकता को अपना प्रतिपाद्य बनाया है। "नारी जीवन ही संघर्षों से भरा हुआ है। अपने अधिकार की, अपने अस्तित्व की, अपनी आकांक्षाओं की, स्वप्न की, शौक की लड़ाई लड़ते–लड़ते जीवन चुक जाता है।"[1] लेखिका आरती लोकेश के उपन्यास की इन पंक्तियों का भावार्थ यह है कि स्त्री का संपूर्ण जीवन ही संघर्ष का दूसरा नाम है। आरती लोकेश की कहानियों की सभी स्त्री पात्र किसी न किसी रूप में न्यूनाधिक संघर्ष करती व पितृसत्ता के नियमों के विरुद्ध विद्रोह करती नजर आती हैं। जैसे प्रशस्ति– पत्र कहानी की शकुंतला व मधुलिका, अवलम्ब कहानी की मुग्धा व ललिता, साँच की आँच कहानी की रिद्धि व शुचि, छठी इंद्री कहानी की विद्या, नई भोर कहानी की उषानी व रजनी, चीर–फाड़ वाली डॉक्टरनी कहानी की सुलभा व शिखा, उफनता लावा कहानी की मिनी, गुड़ की भेली कहानी की कृष्णा आदि सभी इसके जीवंत उदाहरण हैं। उनकी कथाओं की कथावस्तु भले ही वैविध्यपूर्ण हो परंतु साहित्य की धुरी स्त्री का संघर्ष ही है।

1. लैंगिक असमानता के विरुद्ध संघर्ष :–

स्त्री का संघर्ष तो माँ की कोख में ही आरंभ हो जाता है। गर्भ में बच्चे के लिंग का पता चलते ही भ्रूण हत्या कर दी जाती है। यदि एक स्त्री की कोख में एक अन्य स्त्री के जीवन का

Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed
Multidisciplinary Journal
Volume 3 | Issue 4 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

अंकुर पनपता है तो दो स्त्रियों के संघर्ष का आरंभ होता है। एक संघर्ष उस नवजीवन का जिसका इस धरा पर पदार्पण करने से पूर्व ही मिटाने के प्रयास आरंभ हो जाते हैं, और दूसरा संघर्ष उस माँ का जो उस जीवन के इस धरा पर आने का माध्यम है। भले ही हमारी संस्कृति में कन्याओं का पूजन किया जाता हो परन्तु खुद के घर में कन्या का जन्म माथे पर सिलवटें पैदा कर देता है। "एक नहीं, दो नहीं, तीन–तीन बार गर्भ गिरवाकर आई थी। तीन अजन्मी बेटियों की बलि ... ! परिवार में सभी को और स्वयं उसे भी बेटा चाहिए था। वंश बेल कैसे आगे बढ़ती? वंश बेल आगे बढ़ी, जीवन–बेल निर्जीव करती हुई। उस अपराध का दंड इसी जीवन में मिल गया था। वह गुड़ की भेली याद आई जो चार बेटों को लेकर आई। स्वयं को अमिट सौभाग्य की स्वामिनी मानती थी कृष्णा। समाज की रीत यही थी। बेटी बस एक ही काफी थी, बेटे चार भी कम थे। यही सिद्ध हुआ भी। वंशीधर की इस बात के मायने सिरे से बदल चुके थे।"[2]

2. शिक्षा के लिए संघर्ष :–

यह सत्य है कि वर्तमान समय में अधिकांश लड़कियों को प्राथमिक शिक्षा से वंचित नहीं रखा जाता। परंतु इस सकारात्मक बदलाव के बाद भी समाज में यह सोच बनी हुई है कि लड़की रोजमर्रा में काम आने लायक पढ़ना–लिखना सीख ले, बस इतना ही काफी है। समाज का एक बड़ा हिस्सा आज भी लड़की की उच्च शिक्षा के पक्ष में नहीं है। समाज की सोच के पीछे यह धारणा काम करती है कि कितना भी पढ़–लिख ले, करना तो आखिर चूल्हा–चौका ही है। अधिक पढ़–लिख गई तो विवाह के लिए उसके जोड़ का लड़का मिलना मुश्किल हो जाएगा। और फिर उच्च शिक्षा का खर्च और हररोज सफर करके दूर जाने की जहमत अलग से। और फिर बाहर का माहौल भी तो कितना खराब है! कुछ ऊँच–नीच हो गई तो? अच्छा है कि थोड़ा बहुत गुजारे लायक पढ़ा कर अगले घर चलता करो। "शिक्षा के लिए गाँव के बाहर पैर निकालने वाली बहुत सी कन्याओं का हश्र याद आते ही शकुंतला की छाती धड़कने लगती। भले ही ग्राम

पंचायत में उन्हें हादसा–दुर्घटना, होनी का लिखा करार कर घटना पर पटाक्षेप कर दिया हो किंतु सच्चाई पर पड़े पर्दे के पर संवेदनशील दृष्टि का पहुँच पाना इतना असहज भी न था।"[3]

उच्च शिक्षा की प्राप्ति में आने वाली कठिनाइयों के नाम पर लड़की की इच्छा को, उसके सपनों को शान से मारकर उसके विकास का मार्ग अवरूद्ध कर दिया जाता है। यदि लड़की के सिर पर पिता का साया और घर में भाई ने हो तो यह मार्ग और भी दुष्कर हो जाता है। लड़की की माँ को समाज, आस–पड़ोस व परिवार की तानाकशी का शिकार होना पड़ता है। और यदि माँ–बेटी निम्नस्तरीय परिवार से हों तो कहना ही क्या। पूरा समाज शुभचिंतक होने का ढ़ोल पीटने लगता है – "शकुंतला की मत मारी गई है जो लड़की जात को इतना पढ़ा–लिखा रही है। क्या कलेक्टरनी बनाएगी या थानेदारनी? बाप वैसे ही नहीं है लड़की के सिर पर। इकलौती होने के कारण दिमाग अलग फिर गया है छोरी का। धरती पर पर नहीं रखती माँ–बेटी। पाँच किलोमीटर दूर पढ़ने जाती है। पता नहीं किस–किस से दोस्ती गाँठ रखी है। मुँह काला करवाएगी किसी दिन। तब समझ आएगा की लड़की और बछिया तभी तक शरीफ हैं जब तक गले में जंजीर पड़ी है। नहीं तो खुले पिंजरे की चिड़िया की तरह उड़नछू होते देर नहीं लगती।"[4]

3. शारीरिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष :–

लेखिका के कथा–साहित्य में स्त्री के साथ होने वाले शारीरिक शोषण के रोंगटे खड़े कर देने वाले, कुत्सित मानसिकता वाले मर्मांतक व्यवहार भरे पड़े हैं।

"दिनभर बलात्कारियों की खबर के अक्षर कानों में गूँजते रहे। न्यूज चौनलों पर बहस चल रही थी कि लड़कियों को कैसे कपड़े पहनने चाहिए, किसके साथ आना–जाना चाहिए और किस समय घर से बाहर नहीं होना चाहिए। दिन छुपने के बाद घर के अंदर रहना चाहिए जहाँ वह पूरी तरह सुरक्षित है।"[5] परंतु क्या वह घर में सचमुच सुरक्षित है? वास्तविकता तो यह है कि उसके शोषण का आरंभ ही घर से होता है जहाँ उसे एक बोनसाई की भाँति काट–छाँट कर

Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed Multidisciplinary Journal
Volume 3 | Issue 4 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

अपनी इच्छा के अनुरूप आकार देकर तैयार किया जाता है। पूरी तरह फलने–फूलने की स्वतंत्रता उससे छीन ली जाती है। उसके पल्लवन की सामाएँ दृढ़ता से निर्धारित कर दी जाती हैं और इस शोषण को मर्यादा का नाम दे दिया जाता है। आए दिन अखबारों में ऐसी खबरें छपती रहती हैं जिनमें बलात्कारी कोई अपना ही होता है। इससे अधिक भयावह तो यह है कि जितनी खबरें अखबारों में स्थान पा जाती हैं उससे कई गुना अधिक घटनाएँ तो घर–परिवार की मान–मर्यादा की कीमत पर घरों में दम तोड़ देती हैं और किसी को कानों–कान खबर भी नहीं होती। कथाकारा ने इस यथार्थ का चित्रांकन अपनी कथाओं में बखूबी किया है – "मरने दे उस पाखंडी को। थोड़ा दर्द का अहसास तो होने दे। जो दर्द मिल रहा है, उस दर्द से तो कम ही होगा जो उसने मुझे दिया है। ...और कितनी बार कहूँ कि मौसा मत कह उस कमीने को।"[6]

4. अबला छवि के विरुद्ध संघर्ष :–

आरती लोकेश की कथाओं की नायिकाएँ शोषण के सम्मुख सिर नहीं झुकाती और न ही अपराधबोध में आकर मुँह छुपाती हैं। वे दुगुनी ताकत और साहस के साथ शोषण एवं शोषक का सामना करती हैं। अत्याचार की पराकाष्ठा को देखते हुए स्त्री का यह रूप अन्य शोषिताओं के लिए एक प्रेरणास्रोत की भूमिका निभाता है और नवीन साहस का संचार करता है। अन्याय एवं विकृत मानसिकता के विरुद्ध स्त्री संघर्ष का यह एक सशक्त पहलू है। आरती जी भयावह परिस्थितियों को तो वास्तविक स्वरूप में पाठकों के सामने रखती हैं परंतु वे कहीं भी स्त्री को सबला रूप में प्रस्तुत नहीं करती। उनकी कथाओं के सभी स्त्री पात्र संघर्षशील एवं इच्छाशक्ति से भरपूर हैं। कुहासे के तुहिन कथा–संग्रह की प्रमुख कथा तितली और ततैया की कुसुम शिखंडी के हर वार का मुँहतोड़ जवाब देती है – "कुसुम सन्न थी, परास्त नहीं। कुसुम ने शिमला से खरीदा हुआ लंबा चाकू उठाया और एक ही वार में उसके कामांग को उसके शरीर से अलग कर दिया। जब–जब विगत के वीभत्स क्षण दंश देते, बोबीटाइज कर हत्या की जड़ को ही उखाड़ फेंकने का विचार बार–बार उसकी मेधा में कौंधा करता था, सो आज यथार्थ में परिणत

हो गया। अपने हृदय के टुकड़े पर काले बादल मँडराते देख आज यह साहस और बल भी आ गया था। अशक्त में अपार शक्ति का संचार कुछ ऐसे ही उद्दीपनों से हुआ करता है। फिर कुसुम तो पूर्व की तुलना में मानसिक और शारीरिक बलिष्ठता को प्राप्त हो गई थी।"[7]

5. आर्थिक सशक्तिकरण के लिए संघर्ष :–

हमारा समाज अपनी आवश्यकता एवं स्वार्थ के अनुसार स्त्री को ढालता आया है। अधिकांशतः उसके विचारों से लेकर उसकी कार्यशैली को भी पुरुष ही निर्धारित व नियंत्रित करता है। स्त्री के आर्थिक सशक्तिकरण का संघर्ष घर से ही आरंभ हो जाता है। परिवार के किसी आर्थिक मामले में स्त्री की राय जानने की कभी आवश्यकता नहीं समझी जाती, चाहे स्त्री कितनी ही सक्षम व सामर्थ्ययुक्त क्यों न हो। आर्थिक निर्णयों का एकाधिकार केवल पुरुष को ही प्राप्त है, चाहे वह पत्नी से कम कमाता हो या बिल्कुल न कमाता हो। पत्नी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के बावजूद पति की अनुमति के बिना कोई निवेश या खर्च करने का अधिकार नहीं रखती। अपनी ही मेहनत की कमाई पर उसका कोई हक न होना किसी विडंबना से कम नहीं है। वह बाहर जाकर कौन सी नौकरी करे कौन सी न करे यह उसका पिता या पति तय करता है वह स्वयं इसका चुनाव करने के लिए भी स्वतंत्र नहीं है।

कामकाजी स्त्री के जीवन का एक और पक्ष लेखिका हमारे सामने उजागर करती हैं। स्त्री कितनी भी मेधावी व प्रतिभाशाली हो, वह कितनी भी पढ़–लिख जाए, कितने भी ऊँच पद को प्राप्त कर लें परंतु हमारा समाज और हमारे परिवार नौकरी के साथ–साथ उसके गृहिणी रूप की भी अपेक्षा रखते हैं। नौकरी के बावजूद उसे गृहस्थी की वही सब जिम्मेदारियाँ निभाने को बाध्य किया जाता है जो वह घर की चारदीवारी में निभाती थी। जबकि पुरुष का कमा कर लाना ही पर्याप्त है। उसे घर के किसी काम या दायित्व में हाथ बंटाने की कोई बाध्यता नहीं है। ऊपर से वह कमाकर लाने का अहसान जताता है सो अलग। जबकि नौकरी करने वाली

औरतों को दोहरी भूमिका संतुलन बनाकर कुशलता से निभानी होती हैं। इससे उसे शारीरिक श्रम तो अधिक करना ही पड़ता है साथ ही धीरे–धीरे वह तनाव से ग्रस्त होने लगती है। यदि कोई स्त्री इस मानसिकता और सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करती है तो उसे आत्मीय संबंधों की टूटन और पारिवारिक बिखराव की कीमत चुकानी पड़ती है। स्वभाव से अधिक संवेदनशील होने के कारण बहुत सी स्त्रियाँ यह कीमत चुकाने का साहस नहीं जुटा पाती और जीवन भर दोहरे कार्यभार के तनाव से जूझती रहती हैं।

हमारे समाज में ऐसी बहुत सी घटनाएँ देखी जाती हैं जब पत्नी अपने पति से आर्थिक रूप से अधिक सशक्त हो तो वह हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है। उसका अहं यह स्वीकार नहीं पाता कि उसकी पत्नी घर के आर्थिक मामलों में दखलंदाजी करे। उसे पत्नी पर अपना नियंत्रण खोने का भय सताने लगता है। सदियों का नियंत्रण एवं एकाधिकार छूटने का डर उसके मन को कुंठा व अवसाद से भर देता है। ऐसी स्थिति में पुरुष द्वारा पूरा प्रयास किया जाता है स्त्री के सामर्थ्य को आरोपों की धूल से ढकने का। प्रशस्ति–पत्र कहानी की मधुलिका पुरुष की इसी अहंवादी मानसिकता की शिकार बन जाती है– "जख्म एक जैसे दिखते हैं पर होते नहीं। उनकी गहराई पीड़ित ही नाप सकता है। परायों से मिले जख्म समय आने पर भर जाते हैं। अपनों से मिले जख्म शरीर से हृदय तक बेध जाते हैं। जिसकी महत्त्वाकांक्षाओं की क्षुधा ने उसे यहाँ तक पहुँचने पर मजबूर किया, उसके द्वारा लगाए गए लांछन मधुलिका को भीतर तक तोड़ गए। अपमान का यह जहर पिलाने वाला अपना ही था। 'बेस्ट टीचर ऑफ द ईयर' का यह फड़फड़ाता प्रशस्ति–पत्र उसे साँप के उठे हुए फन की भांति काटने को दौड़ रहा है। ईनाम की यह राशि उसे बबूल के काँटे सी चुभ रही है। पिछले कुछ महीनों से शुद्धोधन के खत पर खत आ रहे थे। शब्द कुछ भी रहें, संदेश एक ही होता– 'वापस आ जाओ या मुझे वहाँ बुलाओ।' दोनों में से कुछ भी संभव नहीं हो सका। चिट्ठी में लिखे शब्द 'क्या अकेले ज्यादा मन लग गया है', 'मेरे साथ नहीं रहना चाहती हो क्या?', 'मुझसे जी ऊब गया तुम्हारा?' या

Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed
Multidisciplinary Journal
Volume 3 | Issue 4 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

फिर 'छुटकारा चाहती हो?' मधुलिका पर वज्र की तरह गिरते। गणित के वरिष्ठ अध्यापक का पद शुद्धोधन के लिए खाली कर लेना मधुलिका के हाथ में तो था नहीं।"[8]

निष्कर्ष–

डॉ० आरती लोकेश की कथाएँ यथार्थ की चेतना पर आधृत हैं। उन्होंने स्त्री के कोमल हृदय का विश्लेषण कर उसकी मार्मिक वेदना में करूणा का मिश्रण किया है। स्त्री होने के कारण स्त्रीमन के हर रंग से वे चिर परिचित हैं अतः स्त्री की उन विशेषताओं को सहजता से विश्लेषित कर देती हैं जिन्हें साधारणतया समाज नहीं देख पाता। अपनी हर कहानी में वे हर अपने चरित्रों के साथ बतियाती हुई उन कहानियों के स्त्री पात्रों के माध्यम से स्त्री–जीवन की विराट झाँकी प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने स्त्री–मन के कोने–कोने कोने में झाँकने का सफल प्रयास किया है। उन्हें स्त्री जीवन की गहन अनुभूति है।

संदर्भ सूची :–

1. ऋतंभरा के सौ द्वीप, डॉ० आरती लोकेश, पृष्ठ संख्या – 58
2. गुड़ की भेली, डॉ० आरती लोकेश, पृष्ठ संख्या 124
3. प्रशस्ति–पत्र, डॉ० आरती लोकेश, पृष्ठ संख्या 5
4. प्रशस्ति–पत्र, डॉ० आरती लोकेश, पृष्ठ संख्या 5
5. तितली और ततैये, डॉ० आरती लोकेश, पृष्ठ संख्या 3
6. तितली और ततैये, डॉ० आरती लोकेश, पृष्ठ संख्या
7. तितली और ततैये, डॉ० आरती लोकेश, पृष्ठ संख्या 10
8. प्रशस्ति–पत्र, डॉ० आरती लोकेश, पृष्ठ संख्या 15